Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
October to December 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLVIII, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

बौद्ध धर्म से हिन्दू धर्म को बचाए रखने में ब्राह्मणों की भूमिका

डॉ. श्री कान्त मिश्र*

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शास. महा. मार्तण्ड महाविद्यालय, कोतमा (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – अभी धर्मों पर पुरातन ब्राह्मण धर्म की स्पष्ट छाप है। दोनों ही धर्मों ने थोड़े-बहुत परिवर्तनों के साथ ब्राह्मण-धर्म के अनेक सिद्धांतों एवं कार्य-प्रणाली को ग्रहण किया है। ब्राह्मण-व्यवस्था के अन्तर्गत भी धर्म की नैतिक व्याख्या की गई थी। जब हम महाभारतकार का यह कथन सुनते हैं कि इन्द्रियों और मन का दमन ही मोक्ष है[1] तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे स्वयं महात्मा बुद्ध अथवा महावीर स्वामी ही उपदेश दे रहे हों। 'सत्यं वद, धर्मं चर स्वाध्यायान्मा प्रमदः धर्मात्र प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्, भूत्यै न प्रमदितव्यम्।' इत्यादि तैतिरीय उपनिषद् के शब्द क्या जैन एवं बौद्ध धर्मों के आचार-तत्व के समान ही नहीं हैं? इसमें कोई सन्देह नहीं कि आचारवादी जैन और बौद्ध धर्मावलम्बियों ने इन आचार-तत्वों को अपने जीवन में व्यवहारिक रूप से अधिक प्रयुक्त किया, कम-से-कम कुछ काल के लिए अवश्य ही।

यह कहा जाता है कि बौद्ध धर्म वेद-निन्दक, यज्ञविरोधी और ब्राह्मण विरोधी है। परन्तु वेदों में जो कुछ भी सत्यसम्मत था वह अवश्य उनके लिए ग्राह्य था। उन्होंने स्वयं अपने को 'वेदगू' (वेदज्ञ)[2] कहा था। यही नहीं, ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने कहा कि यमैं ही ब्राह्मण हूँ[3] और इस प्रकार 'ब्रह्मा जानाति इति ब्राह्मणः' परिभाषा सार्थक की। वास्तव में उन्हें ब्राह्मणों की जाति-व्यवस्था मान्य थी, परन्तु जन्म के आधार पर नहीं वरन् कर्म के आधार पर। वे यज्ञ के विरोधी न थे। उन्होंने स्वयं पुरातन ब्राह्मणों से विशुद्ध यज्ञों की प्रशंसा की थी। वे तो एकमात्र हिंसात्मक एवं कर्मकाण्डीय यज्ञों के ही विरोधी थे। ब्राह्मण धर्म के प्रति बिल्कुल यही दृष्टिकोण महावीर स्वामी का भी था। 'पर निन्दा पापकारिणी होती है'[4]-ऐसी घोषणा करने वाले महावीर स्वामी वेद अथवा ब्राह्मणों की निन्दा नहीं कर सकते थे। 'कर्म से ही कोई ब्राह्मण होता है और कर्म से ही क्षत्रिय। कर्म से ही मनुष्य वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र'।[5] जैन धर्म के इस उद्घोष में ब्राह्मणों की जाति-व्यवस्था के ही आमूल उच्छेद का प्रयास है। जैन धर्म की दृष्टि में यजो लोलुप नहीं है, जो पेट के लिए संग्रह नहीं करता, जो घर-बार रहित है, जो अकिंचन हैं और जो गृहस्थों से परिचय नहीं करता, उसे ब्राह्मण कहते हैं।[6] इस परिभाषा के अन्तर्गत निःस्पृह ब्राह्मण को जो मान्यता दी गई है वह स्पष्ट है। 'तप अग्नि है, जीव ज्योति-स्थान है। मन, वचन और काया का योग कुंड है, शरीर कारिषांग है, कर्म ईंधन है, संयम योग शान्तिपाठ है। ऐसे ही होम से मैं हवन करता हूँ। ऋषियों ने ऐसे ही होम को प्रशस्त कहा है'।[7] 'धर्म मेरा जलाशय है, ब्रह्मचर्य मेरा शान्ति-तीर्थ हैं, आत्मा की प्रसन्नता ही मेरा निर्मल घाट है, जहाँ स्थान की आत्मा विशुद्ध होती है।'[8] जैन धर्म के ऐसे उद्गार औपनिषक मनीषियों के उद्गरों से मेल खाते हैं। इनमें यज्ञ, होम, पवित्र स्नान आदि का खण्डन नहीं वरन् विशुद्ध संवर्धन निहित है। इस प्रकार ब्राह्मण धर्म में प्रख्यात यज्ञादि को ग्रहण कर बौद्ध और जैन दोनों धर्मों ने उन्हें नैतिक आधार पर प्रतिष्ठित किया। इनका सूत्र वैदिक ही है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य की महत्ता भी ब्राह्मण धर्म में प्रतिष्ठित थी। कठोपनिषद् का उल्लेख है कि ब्रह्म-प्राप्ति की कामना करने वाले ब्रह्मचर्य का अनुसरण करते हैं।[9] नवीन धर्मों ने ब्राह्मण-धर्म द्वारा प्रतिपादित तप और ब्रह्मचर्य को ही अपनी-अपनी व्याख्या में डाल कर समाज के समक्ष प्रस्तुत किया था।

ब्राह्मण धर्म के अनुसार व्यक्ति तीनों आश्रमों के जीवन को व्यतीत करने के पश्चात् परिपक्व बुद्धि का हो जाता था और तब वह अन्तिम आश्रम में जाकर अधिक प्रौढ़ता के साथ अध्यात्म-चिन्तन कर सकता था। परन्तु जैन और बौद्ध धर्मों ने इस चतुराश्रम व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया और प्रत्येक व्यक्ति को, बिना आयु और काल के विचार के, संसार-त्याग का अधिकार दे दिया। इसका दुष्परिणाम भी सर्वविदित है। बाद में उन्हें संसार-त्याग के अधिकार को नियंत्रित करना पड़ा। उनका यह नियंत्रण परोक्ष रूप से ब्राह्मण व्यस्थाकारों की परिपक्व व्यवस्था की ही मान्यता स्थापित करता है।

ब्राह्मण व्यवस्थाकारों ने चतुराश्रमों में गृहस्थाश्रम को ही सर्वोच्च माना था। परन्तु नवीन धर्मों ने उसे समस्त दुःखों का मूल माना और उसका शीघ्रातिशीघ्र परित्याग कर देने का आदेश दिया। परन्तु फिर दोनों ही धर्मों ने गृहस्थों को भी अपने-अपने धर्म में दीक्षित क्यों किया ? इसीलिए कि एक साथ संसार-त्यागी व्यक्तियों से उनके धर्म नहीं चल सकते थे। पुनः, बौद्ध एवं जैन भिक्षुओं के भरण-पोषण एवं उनके संघों के जीवन-निर्वाह का सम्पूर्ण भार भी गृहस्थों के ऊपर ही था। अतः जिस आश्रम को दोनों धर्मों ने धरासात् करने का प्रयास किया वही उनका त्राता बना। क्या यह ब्राह्मणों के सर्वोच्च आश्रम-गृहस्थाश्रम की मान्यता को स्वीकार करना न था।

बौद्ध धर्म ने ब्राह्मण धर्म द्वारा प्रतिपादित वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों की जीवन-पद्धति के काया-क्लेश की निन्दा की है। परन्तु स्वयं उसने किया ? बौद्ध भिक्षुओं के लिए जिन यम-नियमों अथवा विधि-विधानों का प्रतिपादन बौद्ध धर्म ने किया है वे वानप्रस्थ अथवा संन्यास आश्रमों के नियमों से कम कठोर नहीं है।[10]

बौद्ध धर्म कर्मप्रधान हैं। इनकी दृष्टि में मनुष्य अपने समस्त कर्मों के लिए उत्तरदायी है। कर्म के अनुरूप ही उसे फल मिलेगा। कर्म के कारण ही उसका पुनर्जन्म होता है और कर्म के कारण ही मोक्ष। परन्तु ये सम्पूर्ण सिद्धांत

ब्राह्मण-धर्म में पहले से ही व्याख्यात हो चुके थे। वृहदारण्यक उपनिषद् का कथन है कि यपुण्य-कर्म से पुण्य और पाप-कर्म से पाप की उत्पत्ति होती है।[11] छान्दोग्य उपनिषद् में उल्लिखित है कि 'पुरूष कर्मप्रधान है। जैसा वह इस लोक में करता है उसी के अनुरूप वह मृत्यु के पश्चात् होता है।'[12] अब मोक्ष को लीजिए। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार विमुक्त आवागमन के चक्कर से छूट जाता है।[13] कठोपनिषद् के अनुसार, 'ब्रह्मप्राप्त मनुष्य अनासक्त और अमर हो जाता है।'[14] ये भावनाएँ बौद्ध एवं जैन धर्मों की मोक्ष-सम्बन्धी भावनाओं से मेल खाती हैं। जहाँ तक आत्मा, परमात्मा, सृष्टि आदि विषयों का सम्बन्ध है ब्राह्मण ग्रन्थों में इनके विषय में बहुत-कुछ कहा जा चुका था।

1. महात्मा बुद्ध ने जिस धर्म का प्रवर्तन किया था वह सरल, सुबोध और स्वाभाविक था। परंतु धीरे-धीरे उसका रूप बदलने लगा। उसमें आगे चलकर कई ऐसी बातों का भी समावेश हो गया, जिनका बुद्ध ने विरोध किया था, यथा अवतारवाद, मूर्तिपूजा, कर्मकांड तथा मंत्र तंत्र आदि। बौद्ध धर्म के वज्रयानी संप्रदाय के अंतर्गत घोर अनैतिक एवं भ्रष्ट कार्यों का प्रतिपादन होने लगा था जिससे बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा था।

2. बौद्धधर्म के द्रुतगति से विस्तार का एक प्रमुख कारण बौद्ध संघ था। किंतु कालांतर में संघ का अध:पतन प्रारंभ हो गया। बौद्ध मठ चरित्रहीनता के गढ़ बन गये थे। उनका संघ धर्मसंघ न होकर भिक्षु भिक्षुणियों के पारस्परिक विवाद और कलह के घर बन गये थे। भिक्षुओं और भिक्षुणियों ने सुख, वैभव बिलासी जीवनयापन करना प्रारंभ कर दिया था। इस चरित्रहीनता के परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म पर से लोगों का विश्वास उठने लगा था।

3. बौद्ध धर्म के प्रचार से ब्राह्मणों में चेतना की नई लहर प्रतिक्रिया रूप में दौड़ गईं। इस जागृति ने बौद्ध धर्म को पीछे खंदेड़ दिया। शुंग शासन-काल में ब्राह्मण धर्म के पुनरुद्धार की जो प्रतिक्रिया हुई, वह उत्तरोत्तर सबल होती गई। इसके बाद कण्व और सातवाहन राजा भी ब्राह्मण धर्मावलम्बी थे। गुप्त और वाकाटक राजा भी ब्राह्मणवादी थे। इनके शासनकाल में वैष्णव और शैव संप्रदायों के उन्नति की। ब्राह्मणों ने भक्ति मार्ग, अवतारवाद, मूर्तिपूजा, आराधना, उपासना, व्रत-स्नान, तीर्थपूजा, दान दक्षिणा आदि के द्वारा अपने धर्म को आकर्षक बना दिया। शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट ने दार्शनिक दृष्टि से बौद्ध धर्म का खंडन करके ब्राह्मण धर्म की प्रतिष्ठा स्थापित की।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मस्योपकिषन्मोक्ष:-शान्तिपर्व।
2. सुत्तानिपात 5.1-16.
3. वेरंजक-ब्राह्मण सुत्त (अंगुत्तर निकाय)
4. सूत्रकृतांग 1.13.10.15.
5. उत्तराध्ययन 25.33.
6. उत्तराध्ययन, 25, 88.
7. उत्तराध्ययन, 25.33.
8. उत्तराध्ययन, 12.46.
9. कठ. 1.1.15.
10. 'Though the Buddha condemned morbid ascetic practices it is a supprise to find the discipline demanded of the Buddhistic brethren is more severe in some points than any referred to in the Brahmanical texts.— Radhakrishnan, Indian Philosophy, Vol. I. P. 436.
11. वृहदारण्यक 4.4.5.
12. 'अथ खलु ऋतुमय: पुरूष:। यथा ऋतुरस्मिन् लोके पुरूषो भवति तथेत प्रेत्य भवति'-वृहदारण्यक 3.14.1.
13. 'न सपुररावर्तते-छान्दोग्य' 8.15.1
14. ब्रह्मप्राप्तौ विरजोऽभूद्धिमृत्यु:-कठ, 2.3.18.

****